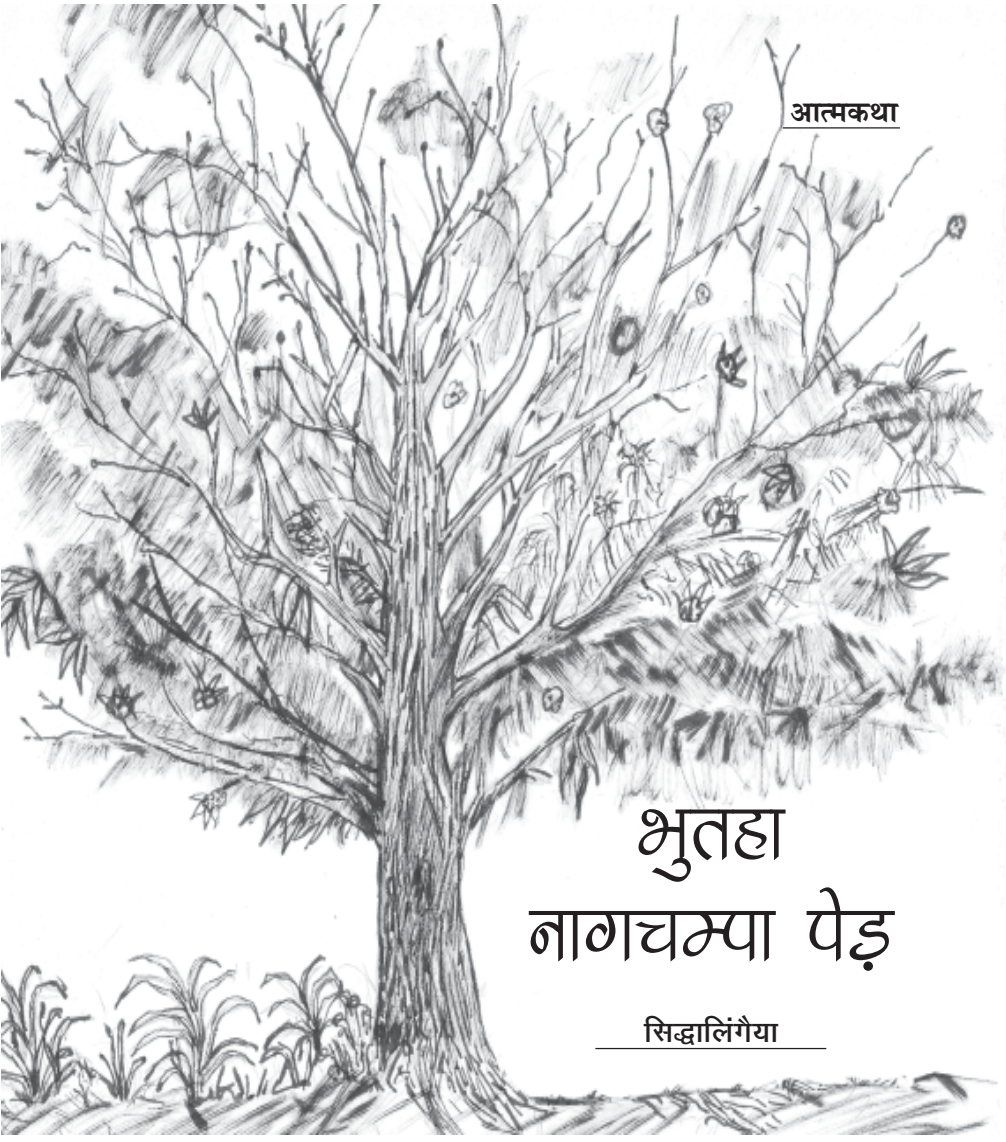

भुतहा नागचम्पा पेड़

सिद्धालिंगैया

उस दलित बस्ती में हमारा घर सबसे आखिरी था। हमारे घरों से अलग हटकर कभी एक घर हुआ करता था जिसकी छप्पर अब टूट चुकी थी और मिट्टी की दीवारें भी महज़ तीन या चार फीट ऊँची ही बची थीं। मैं और मुझ जैसे अन्य घरों के बच्चे इन छोटी-छोटी दीवारों पर चढ़ जाते और दूर से ही अपने माँ-बाप का घर लौटना तकते रहते। कभी-

कभी तो हम उन्हें बुलाने के लिए वहीं से खड़े होकर चिल्लाते भी थे। पता नहीं वे इतनी दूर से हमें देख, सुन भी पाते थे या नहीं। इन दीवारों से हटकर अनिरो नाम के एक आदमी की ज़मीन थी, कोई पाँच-छः सौ फीट तक फैली। इस ज़मीन पर उसका खूबसूरत-सा घर बना हुआ था जिसमें एक बड़ा कुआँ और एक पम्प केबिन भी था। पानी की मोटी धार चलती थी जिससे उसके खेत में सिंचाई होती थी। पर हमारी बस्ती के लिए पीने का पानी हासिल कर पाना भी एक बड़ी बात थी। बस्ती के लोग कुछ दूरी पर बगीचे के पास बने कुएँ से पानी लाते थे। दलितों के अलावा मैंने किसी और को उस कुएँ से पानी लेते नहीं देखा।

मेरी माँ और बापू जब काम पर जाते तो मैं घर ताका करता। शाम ढलते ही मैं मुर्गियों को इकट्ठा कर उन्हें डलिया से ढँक देता और उसके बाद घर में रोशनी के लिए तेल की छोटी ढिबरी जलाता। जब वे लोग वापस आते, तब खाना पकाने की तैयारी करते। कई-कई दिनों हम सिर्फ आलू पकाकर ही खाते और कभी कडली-पूरी खाकर, पानी पीकर सो जाते। हम जो भी उगा पाते, उससे बमुश्किल बापू के कर्ज़ का सूद ही पटा पाते थे।

मजदूरी से माँ-बापू को जो भी मिलता, उससे परिवार चला पाना हमारे लिए बहुत ही कठिन था। मेरी माँ कभी-कभी सावनदुर्गा के जंगल में लकड़ियाँ बीनने जाती और फिर उन्हें साप्ताहिक हाट में बेचती थी। घर लौटते ही वह लकड़ियों का गट्ठर पटक कर अन्दर भागती थी, कहती कि पेशाब आई है। फिर बाहर आकर लकड़ियों के गट्ठर के बीच से गन्ने निकालकर हमें देती।

बापू को पैतृक सम्पत्ति में दो भाग ज़मीन मिली थी जिन्हें हम होसा होला (नई ज़मीन), और हलुरु होला (हलुरु की ज़मीन) कहते थे। मैं अपने माँ-बापू के साथ काफी दूर चलकर होसा होला आता था। मुझे एक पेड़ के नीचे बैठाकर वो दोनों दिनभर वहाँ खेत पर काम करते। दोपहर में सिर्फ खाना खाने के लिए काम रोकते और फिर शाम तक काम करते। एक बार मैंने माँ को किसी से कहते सुना, "मैं अपने बच्चे को पढ़ाऊँगी, कम-से-कम रिश्तेदारों की चिट्ठियाँ तो पढ़ सके।"

जल्दी ही मुझे पता चला कि मेरे चाचा और दूसरे लोग मुझे स्कूल में भरती कराने वाले हैं। एक दिन जब वे मुझे स्कूल में भरती करने के लिए ले जाने वाले थे, मैं भाग निकला। उन्होंने मुझे पकड़ने की कोशिश की। मैं खूब तेज़ भागा पर उन्होंने भी हार नहीं मानी। रोते-चिल्लाते वे मुझे ले गए और स्कूल में भरती करा दिया। स्कूल में पहले ही दिन अपने घर, माँ-बापू, भेड़ों और गायों को याद कर मेरी आँखों में आँसू आ गए। क्लास में कुछ बच्चे तो मुझसे भी ज़्यादा दुखी थे। रोता देख एक टीचर ने मुझे छड़ी से मारा तो मैं और ज़ोर-से रो पड़ा। पर उसके बाद धीरे-धीरे चुप भी हो गया।

आर. गोपालस्वामी अय्यर हॉस्टल

मगड़ी और मंचनबेले में प्राइमरी स्कूल की पढ़ाई करने के बाद मैं बेंगलुरु आ गया। मेरी माँ ने मुझे श्रीरामपुर में दलितों के लिए बने आर. गोपालस्वामी अय्यर हॉस्टल में भरती कर दिया। मेरी माँ वहीं काम करती है यह जानकर मुझे थोड़ी हिम्मत मिली। हॉस्टल में जब कुछ लड़के मेरी माँ से बुरी तरह से बात करते तो मुझे बहुत ही खराब लगता था। मेरे पिता, जो उन दिनों गरीबी का एक चलता-फिरता नमूना लगते थे, मुझसे मिलने अक्सर हॉस्टल आते रहते। हॉस्टल की ज़िन्दगी ने मुझे बहुत-से नए तज़ुर्बे दिए। अलग-अलग जगहों से आए कोई तीन सौ विद्यार्थी उस हॉस्टल में रहते थे। वे सब अलग-अलग तरह की कन्नड़ बोलते। हम चार-पाँच लोग जो बेंगलुरु शहर से थे, जब अपना मुँह खोलते तो गालियों के अलावा और कुछ न निकलता। दस से तीस की तादाद में बच्चे एक ही कमरे में सोते थे। खुजली की बीमारी हॉस्टल में बुरी तरह फैली हुई थी। लड़के शरीर में मलहम लगाकर धूप सेकने बैठते थे।

हॉस्टल बहुत बड़ा था और उसके सामने चार एकड़ का मैदान था। सड़क के उस पार एक सरकारी प्राइमरी स्कूल और एक पुलिस थाना था। पुलिसवाले बन्धक बनाए लोगों को बड़ी बेरहमी से पीटते और कई बार रात में पुलिस थाने से चीखने-चिल्लाने की आवाज़ें आतीं।

हॉस्टल में बड़े बच्चों की एक टोली बहुत ही उम्दा वॉलीबॉल खेलती थी और सब तरफ वाहवाही लूटती थी। खेल के दौरान एक बार बॉल जाकर वॉर्डन को लगी और वह कुर्सी से गिर पड़े। उन्हें अस्पताल में भरती करना पड़ा था। अच्छे खेल के चलते कुछ खिलाड़ियों के नाम तो स्टेट वॉलीबॉल टीम में शामिल कर लिए गए थे। वे खुद को 'आम्बेडकर वॉलीबॉल टीम' कहते थे। हॉस्टल मैदान के दूसरे छोर पर 'कन्नड़ी वॉलीबॉल टीम' अपनी प्रेक्टिस करती थी, उसने भी कई प्रतिद्वन्द्वी टीमों को धूल चटाई थी।

भूत! भूत!

अँधेरा होने के बाद हॉस्टल का मैदान भुतहा हो जाता था। हॉस्टल के भीतरी अहाते में नागचम्पा का एक बड़ा पेड़ था। जिन दिनों वह खिलता उसके नीचे खुशबूदार पीले फूलों की चादर-सी बिछ जाती। शाम का धुँधलका होने के बाद हम उस पेड़ के पास जाने से भी डरते थे। हमने सुन रखा था कि वह भुतहा पेड़ है। जब हमें पता चला कि उस पर बहुत-से भूतों ने परिवार समेत डेरा जमा रखा है तो हम डर के मारे उस पेड़ की तरफ देखते तक नहीं थे।

सबका ये मानना था कि हॉस्टल के बगल वाले पुराने कुएँ में एक भूत रहता है। नहाने के लिए विद्यार्थी सुबह चार बजे उठ जाते, और अपनी खाने की थाली से पानी लेकर नहाते थे।

एक सुबह जब वे नहा रहे थे, अचानक बीच मैदान में आग भभक उठी। यह चिल्लाते हुए कि यह 'मशाल भूत' है, नहाने वाले भाग खड़े हुए। जब दूसरे लड़कों और हॉस्टल के कर्मचारियों ने इस तरह अधनंगे और शरीर में साबुन लगाए, खुद भूत बने लड़कों को भागते देखा तो वे भी बुरी तरह डर गए। थोड़ी देर में अचानक ही आग गायब हो गई और तब जाकर बड़ी मुश्किल से लड़कों ने अपने कपड़े उठाए।

एक बार हम कतार में बैठे, रात का खाना परोसे जाने का इन्तज़ार कर रहे थे। एक लड़के को ठीक अपने आगे बैठे व्यक्ति पर सन्देह-सा हुआ। उसने उसे पहले कभी नहीं देखा था। उसने उसके चेहरे को गौर से देखा, सब कुछ सामान्य लग रहा था, फिर भी उसकी शंका मिटी नहीं। अब की बार उसने उसके पैरों पर नज़र डाली। वे न सिर्फ सामान्य से तीन गुना लम्बे थे बल्कि पीछे की तरफ मुड़े हुए भी थे। वह बड़ी ज़ोर-से चीखा, "भूत! भूत!" लड़के मारे डर के टेबल के ऊपर से ही कूद गए और बदहवास-से इधर-उधर भाग निकले। इसके बाद तो रात में ऐसा माहौल बनता कि खाने के बाद लड़के तब तक भूतों की कहानियाँ सुनते-सुनाते रहते जब तक वे नींद में लुढ़क न जाते।

हम भूखे थे

हॉस्टल में हमें जितना खाना मिलता उससे बमुश्किल हमारा पेट भर पाता था। लड़के अपनी प्लेट लिए, खाने के बाद भगोनों में बचे मद्दे और सारू के लिए झपटते। परोसने वाला व्यक्ति भगोने को अपने सर से भी ऊँचा उठाए रखता। वह भले ही कितनी कसकर पकड़े रहता या कितना भी ऊँचा उठाए रखता, लड़के भगोने को झपट ही लेते और सारा रस्सा झूमाझटकी कर रहे बच्चों के ऊपर गिरता। उनके सिर, कमीज़ और पैंट अजीब-से रंग जाते।

अगर सबके बाद थोड़ा-बहुत मद्दे बचता तो वह उन्हें ही परोसा जाता, जो कतार में बैठ जाते थे। वे इसे 'एक्स्ट्रा' कहते थे। छोटे बच्चे अक्सर इसके लिए मना कर देते। बड़े बच्चे दौड़कर छोटे बच्चों के लिए कतार में जगह बनाते। छोटे बच्चों को देखते ही वे उनसे बड़ा अच्छा व्यवहार करते और उन्हें अपने बगल में बिठाते। बड़े बच्चों के लिए ये छोटे बच्चे बड़े काम की चीज़ थे। जब मैं हॉस्टल में आया तब बहुत छोटा था। इतना नाटा कि छोटे बच्चों में सबसे छोटा लगता था। एक बड़े लड़के ने, जो मुझे देखकर ऐसे व्यवहार कर रहा था जैसे कि उसे मुझमें कोई खज़ाना मिल गया हो, मुझे अपने बगल में बैठने के लिए बड़े प्यार से बुलाया। उसने मुझे एक्स्ट्रा लेकर उसे दे देने के लिए कहा। मैंने उसका अनुरोध ठुकरा दिया और कहा कि अपना एक्स्ट्रा मैं खुद खाऊँगा। उसे बड़ी हैरानी हुई, और वो थोड़ा निराश भी हुआ।

स्कूल के दिनों में प्रार्थना के बाद मालेस्वरम 18वीं क्रॉस रोड पर हम श्रीरामपुर से गवर्नमेंट हाई स्कूल तक पैदल जाते थे। अक्सर हम कुछ भी खाए नहीं होते और ज़ोरों की भूख लगी होती थी। रास्ते-भर घरों के आँगन में लगे फल के पेड़ों पर हमारी नज़र जाती रहती। इस वक्त तक कुछ लोग अपने काम-धाम में चले जाते थे इसलिए हम दीवार फाँदकर आँगन के भीतर कूद जाते और चुपचाप आम, अमरूद और अंगूर तोड़ लेते। हम करौंदे के घने गुच्छे तोड़ते। काले जामुन अपनी जेबों में भर लेते। चारदीवारी के भीतर लगे नल से पानी पीते और चमेली, नागचम्पा और कनेर के फूल तोड़ लेते थे। गर्ल्स हाई स्कूल 13वीं क्रॉस रोड पर था। कुछ बच्चे चुराए हुए फूलों का गुलदस्ता भेंट कर लड़कियों से बात करने के खूब मौके तलाशते थे। स्कूल में टीचर और अन्य बच्चे, दाँतों में जामुनी रंग देखकर हम हॉस्टल के बच्चों को अलग ही पहचान जाते थे।

एक बार हमेशा की तरह, फल तोड़ने के लिए हमने एक लड़के को ऊँचे बेल के पेड़ पर चढ़ा दिया। वह बहुत ही उत्साह से चढ़ भी गया पर उसका उत्साह उस वक्त ठण्डा पड़ गया जब घर मालिक अपने हाथ में छड़ी लेकर घर से बाहर निकला। हम

चिल्लाकर अपने साथी को जल्दी उतरने की नसीहत देते हुए वहाँ से रफूचक्कर हो गए। वह मारे डर के वहीं पर बैठ गया। मालिक ने उसे नीचे उतरने के लिए कहा। लड़के ने अपनी हिम्मत जुटाते हुए कहा, "मैं नीचे आ जाऊँगा पर तुम पहले अन्दर जाओ।" मालिक भयानक गुस्से में था, वह चिल्लाया, "यह तुम्हारे बाप का घर नहीं है, नीचे उतरो, साले चोर कहीं के!"

यह सोचते हुए कि अब हमारे दोस्त का क्या होगा, हम दूर खड़े देखते रहे। घर मालिक और नाराज़ हो गया और उसने लड़के पर पत्थर मारा। पत्थर उसे छू भी नहीं पाया पर उसने ज़ोर-ज़ोर-से चिल्लाना शुरू कर दिया। उसके उतरने का मौका बनाने के लिए हम में से किसी ने मालिक पर पत्थर फेंका। वह छड़ी लेकर हमें मारने दौड़ा। मौके का फायदा उठाकर हमारा दोस्त पेड़ से नीचे कूद गया और दीवार फाँदकर भागने में कामयाब हो गया। हम सीधे स्कूल की तरफ भागे। दोस्त के चेहरे और हाथ-पैर में काफी खरोंचें आईं थीं। फिर तो कुछ दिनों के लिए हमने स्कूल जाने का अपना रास्ता ही बदल लिया था।

लफंगे

हॉस्टल के लड़के पढ़ाई में एक-दूसरे से स्पर्धा करते थे। दूसरों से अव्वल रहने के लिए एक लड़का सुबह चार बजे उठकर ठण्डे पानी से नहाता और चुपचाप पढ़ने बैठ जाता। उसे देख दूसरे भी उठते और जल्दी-जल्दी नहाना निपटाकर पढ़ने बैठ जाते। उनमें से एक तो बिजली गोल हो जाने पर चाँद की रोशनी में पढ़ाई करता रहता। कुछ बच्चे टीचर के दिए हुए नोट्स ही पढ़ते रहते और उन्हें रट लेते। वे किसी से बात तक नहीं करते थे। कभी-कभी प्रार्थना के दौरान हमें तरह-तरह की आवाज़ें सुनाई पड़तीं। कुछ लोग कन्नड़ प्रार्थना के दौरान अँग्रेज़ी के शब्द बुदबुदाते, और कुछ पढ़े गए पाठों का रट्टा मारते जैसे कि वो कोई प्रार्थना हो। एकाध समर्पित किस्म के विद्यार्थी तो इस पढ़ाई के चक्कर में सचमुच पागल ही हो चुके थे।

जहाँ तक मेरी बात है तो पढ़ाकूपन के इन सब उदाहरणों के बावजूद मुझ पर 'भोंदू भगत' का ठप्पा लगा हुआ था। एक दिन जब मैं अपने कमरे में अपने तीनों साथियों के बगैर बैठा हुआ था, सुबह चार बजे उठकर पढ़ने वाले लड़कों में से एक, रंगधामैया ने मुझे बुलाया। मैं आठवीं में था और वह नवमीं में। एक बार मैंने उसका कम्बल किसी और को ओढ़ा दिया था। मुझे लगा शायद उसे पता चल गया है, मैं घबराते हुए उसके सामने गया।

"तुम्हारी माँ हॉस्टल में साफ-सफाई का काम करती है ना?" उसने नरमी से पूछा। जवाब में मैंने कहा, "हाँ।" "कल तुम्हारे पिता हॉस्टल में खाना लेकर आए थे ना?" उसने अगला

सवाल पूछा। इसके जवाब में भी मैंने कहा, "हाँ"। वह कुछ देर खामोश रहा जैसे कि किसी बात पर सोच रहा हो, और फिर अचानक उसने कहा, "तुम होशियार हो। उन तीन लफंगों के साथ मत रहा करो। तुम गरीब घर से हो। वे तो अमीर घरों के बच्चे हैं। आज से तुम मेरे दोस्त हो, मेरी बातों पर गौर करना।"

मुझे यह कुछ अजीब-सा लगा पर मैंने हामी में सिर हिला दिया। अगले दिन खूब सवेरे मैंने देखा कोई मुझे जगा रहा था। ये रंगधामैया था। मैंने चौंककर पूछा, "क्या है?" "चलो ठण्डे पानी से नहाते हैं," उसने कहा। मैं चुपचाप उठा और उसके पीछे चल दिया। इसके बाद तो सुबह उठकर नहाना और फिर पढ़ाई करने बैठ जाना मेरी रोज़ की आदत बन गई। इससे मेरे तीनों दोस्त बहुत निराश हुए। उन्होंने मुझे धमकाया और वे तमाम हथकण्डे आज़माए जो वे कर सकते थे ताकि मैं वापस उसी तरह से फिर उनके साथ हो लूँ, पर मैं डिगा नहीं।

आखिरकार एक रोज़ उन्होंने मेरे उस्ताद, रंगधामैया को पकड़ ही लिया। मुझे बिगाड़ने का आरोप लगाते हुए उसके साथ मारपीट करने की कोशिश की। मेरे बीच-बचाव के बाद ही उन्होंने उसे छोड़ा।

अलग प्लेट

एम. रेवन्ना मेरे पसन्दीदा कन्नड़ गुरु थे। उन्होंने बहुत ही रोचक तरीके से पुरानी कन्नड़ कविताएँ सिखाईं। श्रीरामपुर में जब उनका आना हुआ तो वे हमारे हॉस्टल आए। अगले दिन उन्होंने क्लास को अपने दौरे के बारे में बताया और खास तौर से इस बात का ज़िक्र किया कि हॉस्टल के फर्श इतने साफ-सुथरे हैं कि लगा, इसे छूने से पहले हाथ धो लेना चाहिए। स्वच्छता का स्तर देख वे बहुत प्रभावित हुए। इस बात से मुझे अपनी माँ और झाड़ू-पोंछा करने वाले उसके साथियों पर बहुत गर्व महसूस हुआ।

हमारे ही स्कूल में पढ़ने वाला एक लड़का, जो देखने में मुझसे बड़ा था, मेरा दोस्त बन गया था। वह मुझे अपने घर ले गया। हालाँकि वह बहुत रूढ़िवादी परिवार था, पर सबने मुझसे बड़े प्यार से बात की। उसकी माँ अक्सर मुझे खाने के लिए स्वादिष्ट चीज़ें देतीं। एक दिन मैंने देखा कि खाने के बाद उन लोगों ने मेरी जूठी प्लेट को बाहर एक कोने में रख दिया। मैं थोड़ा झेंप गया। मेरे दोस्त को भी समझ में आ गया था कि क्या हो रहा है। उसके चेहरे से साफ दिख रहा था कि उसे यह अच्छा नहीं लगा। उसका परिवार अपनी रूढ़ियाँ छोड़ पाने की स्थिति में नहीं था। हालाँकि यदि मैं कुछ दिन तक उनके घर मिलने न जा पाता तो घरवालों को अच्छा नहीं लगता था। इन सबके बावजूद हमारी दोस्ती कई सालों तक रही आई।

सिद्धालिंगैया: कन्नड़ कवि। 1970 से 1980 के बीच कर्नाटक के दलित साहित्य और राजनीतिक आन्दोलन में सिद्धालिंगैया का एक प्रमुख स्थान रहा है।

अँग्रेज़ी से अनुवाद: अनिल सिंह: वंचित तबके के बच्चों के साथ काम करने वाली संस्था 'मुस्कान' के साथ लम्बे समय तक काम किया है। वर्तमान में आनन्द निकेतन डेमोक्रेटिक स्कूल, भोपाल से जुड़े हैं। कहानी प्रस्तुति में विशेष रुचि।

सभी चित्र: शिवांगी: अम्बेडकर युनिवर्सिटी, दिल्ली से विज़्युअल आर्ट्स में स्नातकोत्तर। लोक कथाओं की चित्रकारी पर शोध कर रही हैं। स्वतंत्र रूप से चित्रकारी करती हैं। दिल्ली में निवास।

सिद्धालिंगैया की आत्मकथा *ए वर्ड विद यू, वर्ल्ड* के कुछ अंश। आत्मकथा के ये अंश *तूलिका* द्वारा प्रकाशित पुस्तक *बीइंग बॉय्ज़* से लिए गए हैं।